एकात्म मानवदर्शन

दीनदयाल शोध संस्थान

पं. दीनदयाल उपाध्याय

एकात्म मानववाद के प्रणेता

पूरा नाम	:	**दीनदयाल उपाध्याय**
जन्म	:	सोमवार, 25 सितम्बर, 1916 – धाणक्या (राजस्थान)
पैतृक स्थान	:	नगला चन्द्रभान, मथुरा, उत्तर प्रदेश
माता-पिता	:	श्रीमती रामप्यारी, श्री भगवती प्रसाद उपाध्याय
1935	:	मैट्रिक की राज्य स्तर की परीक्षा में प्रथम स्थान, कल्याण हाईस्कूल, सीकर (राजस्थान)
1937	:	इंटरमीडिएट, बिडला कॉलेज, पिलानी, में राज्य भर में प्रथम स्थान तथा सभी विषयों में विशेष योग्यता
1938	:	14 जनवरी-मकर संक्रांति पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में प्रवेश द्वारा राष्ट्रसेवा का प्रण एवं कानपुर में सनातन धर्म कॉलेज से बी.ए. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की
1939	:	सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा में एम.ए.(अंग्रेजी) प्रथम वर्ष प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की
1940	:	राज्य प्रशासन की प्रतियोगी परीक्षा में सर्वोच्च स्थान, किन्तु नौकरी नहीं की
1942	:	प्रयाग से बी.टी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण, लखीमपुर में संघ के प्रचारक नियुक्त
1946-47		सम्राट चंद्रगुप्त और जगद्गुरु शंकराचार्य कृति की रचना
1947	:	'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड' की स्थापना (जिसके अंतर्गत, राष्ट्रधर्म, पांचजन्य एवं स्वदेश का प्रकाशन प्रारंभ)
1952	:	कानपुर में भारतीय जनसंघ के प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन में राष्ट्रीय महामंत्री नियुक्त (29-31 दिसं.-इस पद पर 15 वर्ष रहे)
1963	:	विदेश यात्राओं द्वारा जनसंघ का प्रचार-प्रसार
1964	:	जनसंघ के ग्वालियर अधिवेशन में नवीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दर्शन 'एकात्म मानववाद' विचारार्थ प्रस्तुत किया
1965	:	जनसंघ के विजयवाड़ा अधिवेशन में 'एकात्म मानववाद' की विवेचना प्रस्तुत की, मुंबई में एकात्म मानववाद पर प्रसिद्ध व्याख्यान
1967	:	दिसंबर-भारतीय जनसंघ के कालीकट अधिवेशन में अध्यक्ष पद ग्रहण किया
निर्वाण	:	11 फरवरी 1968 मुगलसराय रेलवे स्टेशन के पास संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु

एकात्म मानवदर्शन के प्रणेता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय

(25 सितंबर, 1916 से 11 फरवरी, 1968)

एकात्म मानवदर्शन के शिल्पकार

राष्ट्रऋषि नानाजी देशमुख

(11 अक्टूबर, 1916 से 27 फरवरी, 2010)

दीनदयाल शोध संस्थान

संस्थापक
नानाजी देशमुख

प्रकाशक
दीनदयाल शोध संस्थान
7-ई, स्वामी रामतीर्थ नगर,
रानी झांसी मार्ग,
झण्डेवाला एक्स.,
नई दिल्ली-110055
दूरभाष : 23526735/92
ईमेल : dridelhi1@gmail.com

मुद्रक :
अक्षर प्रिंटर्स
ए-21/27,
नारायणा इण्ड. एरिया,
फेस-2, दिल्ली-28
फोन : 9717225609,
9136802169

प्रस्तावना

दीनदयाल शोध संस्थान

मंत्रदृष्टा, ब्रहर्षि,
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

परिवार एवं जन्म

पंडित दीनदयाल जी के दादा पण्डित हरीराम जी एक प्रख्यात ज्योतिषी थे और उनकी मृत्यु पर मथुरा तथा आगरा जिलों का समस्त कामकाज बन्द रहा। पण्डित जी मथुरा जिले के एक छोटे से ग्राम नगला चन्द्रभान के निवासी थे। प्रचलित भारतीय परम्परा के अनुसार इस परिवार ने कभी धन की चिन्ता नहीं की और पूरा परिवार अन्त तक एक कच्चे मकान, जिसे झोपड़ी ही कहना उपयुक्त होगा, में जीवन व्यतीत करता हुआ सदैव अत्यन्त दरिद्रता की अवस्था में बना रहा। पण्डित दीनदयाल जी के पिता श्री भगवती प्रसाद, जलेसर रोड, के स्टेशन मास्टर थे। पण्डित दीनदयाल जी की माता श्रीमती रामप्यारी देवी अपने पुत्र के जन्म के समय अपने पिता श्री चुन्नी लाल शुक्ल, जो जयपुर अजमेर रेल मार्ग पर धनकिया के स्टेशन मास्टर थे, के यहां थीं। यहीं पर 25 सितम्बर 1916:: विक्रम संवत् 1973, शालिवाहन शक 1638:: भाद्रपद आश्विन कृष्ण 13, सोमवार के दिन जन्म हुआ। दो वर्ष बाद श्रीमती रामप्यारी देवी के दूसरा पूत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम शिवदयाल रखा गया। शिवदयाल के जन्म के 6 माह बाद ही पिता का निधन हो गया। दोनों भाई अपनी माता के साथ अपने नाना के पास रहने लगे। पण्डित जी जब साढ़े छः वर्ष के थे उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पण्डित दीनदयाल उपाधयाय के बचपन का नाम दीना था।

माता–पिता की स्नेहिल छाया से वंचित दोनों भाईयों ने मां की मृत्यु के दो वर्ष बाद ही सितम्बर,1926 में अपने नाना की छत्रछाया भी खो दी। नाना की मृत्यु के पश्चात दोनों अनाथ बालक अपने मामा के आश्रय में पलने लगे। दीनदयाल जी इस समय 10 वर्ष के थे तथा सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। सन् 1931 में 15 वर्ष की अवस्था में उनके पितृतुल्य मामा का भी देहान्त हो गया और उन्हें कोटा छोड़कर राजगढ़ आना पड़ा। शायद विधाता की इच्छा अनुसार दीनदयाल जी को पूर्णतया अनिकेत बनकर दारिद्र्य और अभाव का दुर्भाग्यपूर्ण जीवन ही व्यतीत करना था। 18वें वर्ष की अवस्था में जब 9वीं कक्षा में थे, 18 नवम्बर, 1934 को उनका भाई भी उनको छोड़कर इस संसार से विदा हो गया। अब वे अपनी वृद्धा नानी के पास आकर रहने लगे। उनके, अपने ममेरे भाइयों से बड़े स्नेहपूर्ण सम्बन्ध थे।

शिक्षा-दिक्षा

19 वर्ष की अवस्था में, 1934 में पण्डित जी ने कल्याण हाई स्कूल सीकर (राजस्थान) से मैट्रिक की परीक्षा दी और अजमेर बोर्ड में प्रथम श्रेणी से प्रथम उर्त्तीण हुए। इसी वर्ष जाड़ों में उनकी नानी भी स्वर्गवासी हो गयीं। प्रखर बुद्धि, अत्यन्त मेधावी एवं प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी होने के कारण स्वर्ण पदकों के साथ ही छात्रवृत्ति के आधार पर वे पिलानी चले गये और बिड़ला इण्टर कालेज से इण्टर की परीक्षा प्रथम श्रेणी से प्रथम पास की। कोटा में तो उन्होंने 3 वर्ष सेल्फसपोर्टिंग में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। धन का अभाव तो उनके साथ था ही, मानसिक परिश्रम और कुपोषण का प्रभाव उनके जीवन में सदैव बना रहा। आगे बड़े होने पर भी इसी कारण न तो वे कभी, पूर्ण स्वस्थ रहे, न चेहरे की झुर्रियां ही मिट सकीं। दुर्बल काया में एक उच्च कोटि का श्रेष्ठ मानव मस्तिष्क सदैव विद्यमान रहा और उसी ने देश में महान वैचारिक क्रान्ति की।

1937 में पुनः छात्रवृति प्राप्त कर पण्डित जी बी.ए. की पढ़ाई के लिए कानपुर आ गये। कानपुर में उनका सम्बन्ध माननीय भाऊराव देवरस से हुआ और उनकी प्रेरणा से पण्डित दीनदयाल जी संघ के स्वयंसेवक बने। 1937 में वेदमूर्ति पण्डित सातवलेकर जी कानपुर शाखा में आये और पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के बारे में भविष्यवाणी की, ''किसी दिन बड़ा होकर कुशाग्र बुद्धि बालक देश का गौरव बनेगा।'' जो आगे चलकर सत्य सिद्ध हुआ। इसी समय उनका संबंध श्री सुन्दर सिंह भण्डारी, श्री बापू राव मोघे, भइया जी सहस्त्रबुद्धे, नानाजी देशमुख तथा बापूराव जोशी जैसे कार्यकर्ताओं से आया। कानपुर में ही उनकी भेंट संघ निर्माता परमपूज्य डा. केशव बलिराम हेडगेवार से हई।

स्वातंर्त्य वीर सावरकर, मान्यवर बाबा साहब आपटे तथा दादाराव परमार्थ का सानिध्य भी उन्हें इसी समय प्राप्त हुआ। संघ के शारीरिक कार्यक्रमों में पण्डित जी कभी अच्छी सफलता प्राप्त नहीं कर सके परन्तु बौद्धिक परीक्षा में उनका स्थान सर्वोच्च रहता था। एक बार तो बौद्धिक परीक्षा में उन्होंने अपने उत्तर तर्कशुद्ध पद्य में लिखे जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा माननीय बाबा साहब आपटे ने की। कानपुर में ही पंडितजी ने संघ की प्रतिज्ञा लीं सन् 1939 में कानपुर सनातन धर्म कालेज से प्रथम श्रेणी में बी.ए. की परीक्षा की। इस समय तक पण्डित जी अपना पर्याप्त समय संघ कार्य को देने लगे थे। एम.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी के अंकों के साथ सेन्ट जोन्स कालेज से पास की परन्तु अपनी बहन श्रीमती रामादेवी की बीमारी के कारण उत्तरार्द्व की परीक्षा न दे सके। मामाजी के आग्रह पर

वे प्रशासनिक परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए। परन्तु उसका तिरस्कार कर वे एल.टी. करने के लिए प्रयाग चले गये। वहॉ से उन्होंने 1942 में एल. टी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

संघ के प्रचारक

1942 में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपना शेष जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के नाते राष्ट्र को समर्पित कर दिया और वे लखीमपुर जिले के प्रचारक नियुक्त किये गये। इस समय उनका स्थानीय आवास पण्डित श्यामनारायण मिश्र के घर पर ही था। 1947 में वे, उत्तर प्रदेश के सहायक प्रान्त प्रचारक बनाये गये और उनका केन्द्र लखनऊ बना।

निरन्तर प्रवास और संगठन कार्य का सतत मार्ग दर्शन, प्रदेश के कोने–कोने में लक्षावधि स्वयंसेवकों से मधुर स्नेहपूर्ण आत्मीयतासिक्त संबंधों की स्थापना यही पंडित जी का एकमेव कार्य था।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

पण्डित जी प्रवास पर जहां जाते अपने मधुर, निश्छल, स्नेहपूर्ण व्यवहार और मधुर वाणी के बल पर सभी कार्यकर्ताओं का मन मोह लेते थे। उनके श्रेष्ठ मार्ग दर्शन और अविराम साधना के कारण प्रदेश में संघ कार्य,दिन दूनी रात चौगुनी गति से प्रगति के शिखरों की ओर बढ़ने लगा। पण्डित जी अल्पकाल में ही अजातशत्रु एवं असीम श्रद्वा के पात्र बन गये। उनके सम्बन्ध में आने वाले नागरिक भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। प्रदेश के सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं सर्वश्री रज्जू भइया, अनन्तराव गोखले, विजय मुंजे, भाऊ जुगादे, सत्यव्रत सिन्हा, रामनाथ भल्ला, डॉ. पी.के. बनर्जी, माधव देवले, वीरेन्द्र भाई आदि सथी कार्यकर्ताओं को उनके साथ कार्य कारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश

1947 में संघ की ओर से लखनऊ में ''राष्ट्रधर्म प्रकाशन'' की स्थापना हुई और साथ ही राष्ट्रधर्म मासिक, पांचजन्य साप्ताहिक और स्वदेश दैनिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पण्डित जी इस प्रकाशन के मार्गदर्शक तथा कर्ता–धर्ता बने।

संघ कार्य के लिये सहप्रान्त प्रचारक के नाते प्रवास भी करते थे और इस पत्र का संचालन भी। पत्रकारिता के कार्य में सर्वश्री राजीव लोचन अग्निहोत्री, अटल बिहारी वाजपेयी, महावीर प्रसाद त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरिश चन्द्र मिश्र, तिलक सिंह

परमार, यादवराव देशमुख, वचनेश त्रिपाठी, भानुप्रताप शुक्ल आदि ने क्रमशः सम्पादन कार्य तथा सर्वश्री मनमोहन गुप्त, ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, राधेश्याम कपूर, नारायण कृष्ण पावगी तथा बजरंग शरण तिवारी ने व्यवस्था कार्य सम्हाले। जिस समय स्वदेश दैनिक प्रारम्भ हुआ श्री नानाजी देशमुख संस्थान के प्रबन्ध निदेशक बनाये गये।

इन पत्रों में विभिन्न विषयों पर लिखे गये विद्वतापूर्ण सारगर्भित लेखों के अतिरिक्त पंडित जी ने 'सम्राट चन्द्रगुप्त' और 'जगद्गुरू शंकराचार्य' नामक वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में दो क्रान्तिकारी वैचारिक ग्रन्थ भी लिखे।

इस समस्त काल में पण्डित जी को न अपने शरीर की सुध थी, न कपड़ों की। फटे पुराने कपड़े, कहीं भी सो जाना, कुछ भी खा लेना। प्रारम्भिक काल में उन्हें कम्पोजिंग, बाइंडिंग और डिस्पैचिंग तक स्वयं करना पड़ा कभी-कभी तो दो पैसे की बचत के लिए पैदल ही स्टेशन से गाँव की ओर चल देते, पूरे माह में 10 रू. भी अपने पर खर्च न हों यह प्रयास रहता था उस अनासक्ति का जिसका नाम था पण्डित दीनदयाल उपाध्याय।

संघ पर प्रतिबन्ध

30 जनवरी सन् 1948 को महात्मा गांधी की निर्मम हत्या से उत्पन्न देशव्यापी सहानुभूति का लाभ उठाकर (प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू का इन्द्रासन, संघ की प्रतिदिन बढ़ती हुई प्रबल संगठित शक्ति के आगे जो बोलने लगा था यद्यपि संघ को सत्ता की कोई आकांक्षा नहीं थी।) पं. नेहरू ने उस हत्या से सम्बन्धित होने का झूठा आरोप लगाकर संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया और संघ को कुचलकर समूल नष्ट करने के लिए पूरे देश के लगभग एक लाख स्वयंसेवकों, संघ के सरसंघचालक परमपूज्य श्री गुरूजी तथा देश भर के संघ अधिकारियों को बन्दी बनाकर जेलों में बन्द करा दिया। संघ द्वारा संचालित सरस्वती शिशु मन्दिरों, संघ कार्यालयों तथा राष्ट्रधर्म प्रकाशन के कार्यालय को सीलबन्द कर दिया गया।

10 फरवरी को पण्डित दीनदयाल जी तथा रामराथ भल्ला, लखनऊ के प्रचारक के साथ जिलाधीश के सम्मुख समर्पण करने के कारण बन्दी बनाकर जेल भेज दिये गये थे। संध के कार्यकर्ताओं के साथ हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता भी पकड़कर जेल में बन्द कर दिये गये। लखनऊ जिला जेल में पण्डित जी लगभग पांच महिने जेल में रहे। पूरे समय उन्होंने केवल धोती, बनियान का प्रयोग किया। पण्डित जी की प्रेरणा से, प्रातः से सायं तक पूरे समय टाइमटेबल बनाकर सभी कार्यकर्ताओं के स्वास्थ्यवर्धन एवं मानसिक विकास के विशेष कार्यक्रम बनाये गये। संस्कृत की कक्षा भी आरम्भ की गई। भारत के नवनिर्मित संविधान पर भी

दो दल बनाकर पक्ष और विपक्ष की चर्चा कर कार्यकर्ताओं का ज्ञानवर्धन किया जाता। लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों पर गोष्ठियां की जाती थीं। पण्डित जी लगभग पांच माह लखनऊ जिला जेल में रहे।

इस काल में संघ के पक्ष और विपक्ष में प्रकाशित होने वाले सभी समाचार पत्र एवं पुस्तकें जेल में पहुंचें इसकी व्यवस्था पण्डित जी ने की थी। जेल में अव्यवस्था और उत्पीड़न के समाचार समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते रहें। इसकी भी व्यवस्था की गई। जेल से बाहर आने पर पांचजन्य और राष्ट्रधर्म का पुनः प्रकाशन हो गया। 6 अगस्त 1948 को पूज्य श्री गुरूजी (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री पूजनीय श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर) कारावास से मुक्त कर दिये गये और नागपुर से दिल्ली आ गये।

पण्डित जी भूमिगत हो गये और सत्याग्रह का संचालन गुप्त रहकर करने लगे। जैसे-जैसे सत्याग्रह जोर पकड़ता गया। पण्डित नेहरू की बौखलाहट बढ़ती गई। 20 दिसम्बर को उन्होंने संघ को कुचल डालने की धमकी दी। एक ओर कांग्रेस बौखला रही थी परन्तु देश के विचारवान राष्ट्रीय नेताओं और प्रमुख पत्रकारों की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। चारों ओर से संघ पर प्रतिबन्ध हटाने की मांग बुलन्द होने लगी और संघ के समर्थन में रोज लेख निकलने लगे। मद्रास के उदार दल के नेता श्री टी.आर. वेंकटरमन शास्त्री, पण्डित मौलिचन्द्र शर्मा, तथा केसरी के सम्पादक श्री ग.वि. केतकर की मध्यस्थता के प्रयासों के पश्चात् सरदार पटेल ने संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए अपने निर्णय पर पुनः विचार करने का आश्वासन दिया। जिसके फलस्वरूप 21 जनवरी 1947 को सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

संघ पर से प्रतिबन्ध हटने के पश्चात् दीनदयाल जी पुनः पत्रों के प्रकाशन और संघ के संगठन कार्य में जुट गये। उनके त्यागमय जीवन, निरहंकारी स्वभाव, निःश्छल हृदय, सद्व्यवहार, दयालुता एवं श्रेष्ठ मानवीय व्यवहार एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा ज्ञान के संस्मरण देश के कोने-कोने में कार्यकर्ताओं के मन में इतने बिखरे पड़े हैं कि उनसे हजारों पृष्ठों का एक महान ग्रन्थ तैयार हो सकता है। संघ के स्वयंसेवकत्व के गुण उनमें कूट-कूटकर भरे थे और उनका जीवन उनका मूर्तिमंत स्वरूप था। ज्ञान इतना कि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे विषयों को इतने सरल शब्दों में समझा देते थे कि बहुत कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी उनहें आसानी से समझ लेता था। प्रत्येक विषय के बारे में उनका ज्ञान इतना अधिक था कि आश्चर्य होता था। वे कब पढ़ते थे कहां पढ़ते थे कोई नहीं जानता। पर ऐसा लगता था मानों हर विषय के बारे में उनका ज्ञान जन्मजात है। इस काल में उन्होंने जो कुछ विशिष्ट लेख लिखे वे निम्न प्रकार हैं।

(1) भारतीय राष्ट्रधारा का पुनः प्रवाह (2) भगवान कृष्ण (3) राष्ट्रीय जीवन की समस्याएं (4) भारतीय राजनीति की मौलिक भूल (5) लोकमान्य तिलक की राजनीति (6) भारतीय संविधान पर दृष्टि (7) जीवन का ध्येय तथा राष्ट्रीय आत्मानुभूति आदि। राजनीति में प्रवेश अप्रैल, 1951 में उत्तर प्रदेश में परमपूज्य श्री गुरूजी की अनुमति से संघ के स्वयंसेवकों द्वारा उत्तर प्रदेश जनसंघ नाम से एक नये राजनैतिक दल की स्थापना हुई। लखनऊ के अधिवक्ता श्री राजकुमार जी उसके अध्यक्ष चुने गये तथा पण्डित दीनदयाल उसके महामंत्री बने। इसी योजना के अन्तर्गत 5 मई को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कलकत्ता में पीपुल्स पार्टी की स्थापना की तथा 27 मई को पंजाब में जनसंघ बना।

20 से 22 अक्टूबर तक दिल्ली के राघोमल हायर सेकेन्डरी स्कूल में एक अखिल भारतीय दल की स्थापना के लिए त्रिदिवसीय सम्मेलन हुआ जिसमें 21 अक्टूबर को भारतीय जनसंघ की स्थापना की घोषणा की गई। दिसम्बर, 1952 में कानपुर में भारतीय जनसंघ का प्रथम अधिवेशन हुआ और डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी उसके अखिल भारतीय अध्यक्ष तथा पं. दीनदयाल उपाध्याय महामंत्री सर्वानुमति से बनाये गये। इस संगठन के उद्भव के मूल में वे अत्याचार और अन्याय थे जो 1948 में पं. नेहरू के द्वारा संघ पर लगाये गये प्रतिबन्ध के समय संघ और उसके कार्यकर्ताओं ने झेले थे। उस समय भी विचार स्वयमेव प्रस्फुटित हुआ कि ऐसे अन्यायों के निराकरण के लिए अपना समर्थक एक राजनैतिक पक्ष होना आवश्यक है।

जनसंघ की प्रगति

भारतवर्ष के कोने-कोने में भारतीय जनसंघ की भूमिका, आवश्यकता तथा रीति-नीति को पहुंचाने के लिए डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और पं. दीनदयाल उपाध्याय अनथक प्रयास में जुट गये। चारों ओर नए दल का महान स्वागत हुआ। और आयोजित स्वागत समारोहों और सार्वजनिक सभाओं में लाखों लोग उपस्थित रहते थे।

जनसंघ बड़ी तेजी से बढ़ने लगा और इसी बीच जनसंघ की रीति-नीति और कार्यकर्ताओं का व्यवहार सम्बन्धी मार्गदर्शन करने के लिए पं. दीनदयाल जी ने 'सिद्धान्त और नीति' नामक पुस्तक की रचना की। पं. दीनदयाल जी भारतीय जनसंघ के मार्गदर्शक और सूत्रधार थे।

सन् 1953 से 1967 तक पण्डित दीनदयाल जी उपाध्याय पार्टी के महामंत्री के नाते पार्टी का संचालन करते रहे। जम्मू आन्दोलन की समाप्ति के बाद जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् का विलय जनसंघ में हो गया। 14 वर्ष के महामन्त्रित्व काल

में डॉ. रघुवीर, श्री देव प्रसाद घोष (बंगाल), श्री प्रेमनाथ डोगरा (जम्मू कश्मीर), श्री पीताम्बर दास (उ.प्र.), श्री ए. रामाराव (आंध्र), श्री बच्छराज व्यास (राजस्थान) तथा पं. मौलिचन्द्र शर्मा, श्री उमाशंकर त्रिवेदी आदि ने अखिल भारतीय अध्यक्ष के नाते कार्य किया। भारतीय जनसंघ की गति, प्रगति और विकास का सारा श्रेय पण्डित दीनदयाल जी के अहर्निष, अनथक परिश्रम, चिन्तन तथा योजना को ही देना होगा। उनका प्रत्येक भाषण एक नई दिशा देने वाला और कार्यकर्ताओं को अपूर्व उत्साह प्रदान करने वाला होता था। हर चुनाव में जनसंघ गतिमान होता चला गया और बहुत शीघ्र कम्युनिस्ट पार्टी को पीछे छोड़कर अखिल भारतीय राजनैतिक दल के रूप में देश की दूसरे नम्बर की पार्टी बन गया।

पं. दीनदयाल जी ने जनसंघ को केवल राजनैतिक दिशा ही नहीं दी, विश्व को एकात्मवाद का नितान्त नया और अभूतपूर्ण दर्शन भी दिया, जिसका सार तत्व है कि यदि हम मानव का चिन्तन और विकास, अध्यात्म और भौतिक सुख जैसी इकाईयों में अलग-अलग न करके यदि हम सम्पूर्ण मनुष्य का, उसकी समस्त आवश्यकताओं (शारीरिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक) का चिन्तन केवल एक इकाई के रूप में करें, तभी मानव का सही विकास सम्भव होकर विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। और मानव समाज वास्तविक सुख, समृद्धि और शान्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। इस समय तक केवल दो ही दर्शन प्रचलित थे। पूंजीवाद और समाजबाद। मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं का विचार करते थे और दूसरी ओर कुछ दर्शन मनुष्य के केवल आत्मिक और आध्यात्मिक विकास का चिन्तन करते थे। पण्डित जी ने दोनों को मिलाकर मनुष्य का एकात्म चिन्तन करने का नया दर्शन विश्व को दिया। और इस मंत्रदृष्टा राजर्षि के नाते हमारे सामने आये। ऐसे महान व्यक्ति को जिसने राजनीति की गन्दगी को भी शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए नैतिकता और मूल्यों पर आधारित राजनीति चलाने पर बल दिया, ऐसे महापुरूष को पाकर, कौन अभागा देश धन्य न हो उठेगा। उनके इस दर्शन के सामने प्रचलित सभी दर्शन बचकाने और बौने लगने लगे।

इसी समय पं. दीनदयाल जी ने अल्मोड़ा के विद्वान दार्शनिक-चिन्तक श्री बद्रीशाह टुल धरिया द्वारा लिखित 'दैशिक शास्त्र' नामक ग्रन्थ को खोज निकाला और उसके आधार पर चिति और विराट की कल्पना हमारे सामने उपस्थित कर राष्ट्र चिन्तन और देशभक्ति को एक नया आयाम दिय। चिति और विराट के मूल सूत्र, एकात्म मानववाद की तत्व मीमांसा, के साथ एकाकार होकर एक महान दार्शनिक के रूप में साकार हो उठे।

पण्डित जी की विदेश यात्रा

भारतीय जनसंघ के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए कांग्रेस का जनसंघ के विरूद्ध भ्रामक प्रचार बराबर जोर पकड़ता जा रहा था। विदेशों में भी यह दुष्प्रचार जारी था। अत: इस प्रकार का निर्णय लिया गया कि जनसंघ की बिगाड़ी जा रही छवि को विदेशों में सुधारा जाय और पण्डित जी ने इस कार्य के लिए अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, इंग्लैंड तथा पूर्वी अफ्रिका के देशों का दौरा किया। वहां पर पण्डित जी ने सभाओं को सम्बोधित किया। वहां के प्रवासी भारतीयों से मिले और इंग्लैंड में, वहां की संसद को भी सम्बोधित किया। पण्डित जी के इस प्रवास का जनसंघ को बहुत लाभ हुआ। इन देशों के निवासी भारतीयों का सारा स्पष्टीकरण प्राप्त करने के बाद उनका मनोबल ऊंचा हो गया और भारत के प्रति अपने सूत्र जोड़ने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। इस प्रवास में पण्डित जी ने अत्यन्त निकट से पाश्चात्य जीवन को देखा और वहॉ के आर्थिक तथ्यों का अध्ययन किया। पण्डित जी ने इस प्रवास में और अपने कई भारतीय तथा विदेशी मित्र बनाये जो आजीवन उनके प्रशंसक बने रहे। इसी प्रवास में उन्होंने श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी, श्री मनोहर लाल सोंधी तथा डॉ. नारायण स्वरूप शर्मा जैसे व्यक्तियों को पुन: भारत लौटने की प्रेरणा भी दी।

जब पण्डित जी चुनाव लड़े

1963 में जौनपुर के संसदीय उपचुनाव में पण्डित जी के न चाहते हुए भी एक तरह से, पण्डित जी के पीछे पड़कर और उनका घेराव करके पार्टी कार्यकर्ताओं ने उन्हें चुनाव में खड़ा कर दिया। पण्डित जी चुनाव लड़े, सिद्धांतों के आधार पर पूरी शक्ति से लड़े परन्तु उन्होंने कांग्रेस प्रत्याशी की तरह चुनाव में जातिवाद को उभारने अथवा धन को वोटों की खरीद के लिए उपयोग, करने से स्पष्ट मना कर दिया। पण्डित जी चुनाव हार गए और बड़ी उदारता व सरलता के साथ उन्होंने पत्रकारों के बीच अपनी इस हार को हंसकर स्वीकार कर लिया, ''अरे भाई मुझे हारना तो था ही, कांग्रेस का प्रत्याशी मुझसे कहीं अधिक योग्य था और बहुत वर्षों से इस क्षेत्र में जनसेवा कर रहा था।'' अर्थात् सुख और दु:ख जय और पराजय, गीता के एक स्थितप्रज्ञ ऋषि के समान उनके लिए समान थे।

सत्ता में भागीदार

1967 तक पहुंचते-पहुंचते श्रीमती इन्दिरा गॉधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी पतन की ओर तेजी से बढ़ने लगी और 1967 में पूरे उत्तर भारत के समस्त हिन्दी भाषी प्रान्तों में, पंजाब और गुजरात में, विरोधी पक्ष की मिली-जुली संविद

सरकारें प्रस्थापित हो गयीं। जनसंघ इन सभी राज्यों में सत्ता का भागीदार बन, परन्तु विरोधी पार्टियों के आपसी मतवैभिन्य तथा काम करने के तरीकों के अन्तर के कारण यह खिचड़ी सरकारें अधिक न चल सकीं और दो वर्ष के अन्दर-अन्दर एक के बाद एक ये सभी सरकारें धराशायी हो गयीं। ये सरकारें भी भानमती का अजीब पिटारा थीं, जिनमें दो परस्पर विरोधी ध्रुब कम्युनिस्ट और जनसंघ एक साथ शामिल थे। इन संविद सरकारों का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि जनता को पहली बार यह विश्वास हुआ कि कांग्रेस पार्टी को भी सत्ता से हटाया जा सकता है। इस मायने में यह प्रयोग सफल और अभिनव ही कहा जाएगा। इस खिचड़ी को पकाने की सफलता का श्रेय भी बहुत कुछ पण्डित जी को जाता है। उनका कहना था, ''पहले इस महाशत्रु को मार दो, बाद में आपस में एक दूसरे को समझ लेंगे।''

जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष

1968 में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए और कालीकत में जनसंघ का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इस समय केरल में कम्युनिस्ट नेता, श्री नम्बूदरीपाद मुख्यमंत्री थे।

कम्युनिस्टों के गढ़ को तोड़ने का पण्डित जी का यह प्रयास था। पण्डित जी की अध्यक्षता का समाचार देश के कोने-कोने में जंगल की आग की तरह फैल गया और कार्यकर्ता खुशी से झूम उठे। उनके मन कालीकत पहुंचने के लिए उतावले हो उठे। देश के कोन-कोने से अनेक प्रतिबन्ध लगाए जाने पर भी बीस हजार कार्यकर्ता बसों, ट्रकों और रेलों से कालीकत जैसे सुदूर स्थान पर जा पहुँचे। कम्युनिस्ट सरकार ने, मान्य राजनीतिक परम्पराओं के विरूद्ध, सहयोग के स्थान पर सब प्रकार के रोड़े अटकाये। न रहने को प्रर्याप्त जगह थी और न खाने के लिए भोजन। लोग अपनी बसों की छतों एवं सड़कों के किनारे रात में सो जाते थे और अधिकांश लोगों ने बाजार में मिलने वाली काफी, पकौड़ी और केलों पर ही तीन दिन व्यतीत कर दिए। शोभा यात्रा तो अभूतपूर्व थी, मानों सारा केरल उमड़कर सड़कों पर आ गया हो। मीलों लम्बा जुलूस, नाचते-गाते लोग-आदिवासियों से लेकर बड़े-बड़े महलों में रहने वाले नागरिक, अपार जनसमूह, केसरिया झण्डों से आच्छादित सड़कें, महल और अटारी देखकर उस दिन कालीकत केसरिया रंग में नहा रहा हो, ऐसा अभूतपूर्व दृश्य था। ऐसा कोई भी लोकवाद्य और आदिवासी कबीला नहीं बचा, जो उस जुलूस में उपस्थित न हो। अलग-अलग भाषा, अलग-अलग नारे एक दूसरे की भाषा समझते नहीं पर सब नाच गा रहे थे। हर्षविभोर थे। शाम को एक विशाल मैदान में सार्वजनिक सभा हुई। भीड़ इतनी थी कि तिल रखने

की जगह नहीं। एक–एक गज पर बिजली की राड और झण्ड़े, सारा मैदान दुल्हन की तरह सजाया गया था। पण्डित जी को 15 सेर फूलों की भारी–भरकम माला पहनाकर स्वागत किया गया। पण्डित जी का अध्यक्षीय भाषण अविस्मरणीय एवं अभूतपूर्व था। उन्होंने कार्यकर्ताओं को प्रेरणा और नई दिशा तो उस भाषण के द्वारा दी ही, देश की किसी भी ज्वलन्त समस्या को उन्होंने नहीं छोड़ा, जिस पर अपने विचार प्रस्तुत कर समस्या का निदान न किया हो। कुछ प्रमुख कम्युनिस्ट नेताओं ने इसी सभा में अपना नाता जनसंघ से जोड़ा, पर दैव को शायद यह सब सहन न हो सका। जनसंघ की अग्नि–परीक्षा शायद अभी पूरी नहीं हुई थी और अधिकांश लोगों को पण्डित जी के यह अन्तिम दर्शन थे।

महामानव की महायात्रा

दिनांक 11 फरवरी को सायंकाल पण्डित जी ने लखनऊ से पटना के लिए रेल द्वारा प्रथम श्रेणी के डिब्बे में प्रस्थान किया, परन्तु वे गंतव्य पर नहीं पहुंचे। उनका डिब्बा खाली था और सामान गायब। प्रात:काल 12 फरवरी को सारे विश्व ने सुना कि पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी की रेलगाड़ी में हत्या कर दी गयी। और उनका शव मुगलसराय के रेलवे यार्ड में पटरी के किनारे पड़ा हुआ पाया गया। सारा भारत सिसक उठा, गृहिणियों ने जलते हुए चूल्हों में पानी डाल दिया। भारत के कोने–कोने में पण्डित जी के व्यक्तिगत निकट सम्पर्क में आये लाखों आबाल, वृद्ध, नर–नारी, संयम न रख सके और फूट–फूट कर रो पड़े।

जिसके लिए भी संभव हो सका, वह मुगलसराय की ओर दौड़ पड़ा। पण्डित जी का शव विमान द्वारा दिल्ली ले जाया गया। वहां उन्हें अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। न तो वे प्रशासन से सम्बन्धित थे, न सांसद, न मंत्री परन्तु अपने प्रकार के वे अकेले व्यक्ति थे जिनके शव पर राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसैन, प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी तथा दिल्ली में उपस्थित सभी बड़े राजनैतिक नेताओं ने पुष्प माला डालकर श्रद्धांजलि अर्पित की। कार्यकर्ताओं का तो कुछ कहना ही नहीं था, कितने कार्यकर्ताओं ने अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाये उसकी कोई गिनती नहीं कर सका। सायंकाल जिस मिट्टी ने उन्हें जन्म दिया था, उसी धरती मां की गोद में, उनकी चिता को अग्नि देकर उनके पंचभूत शरीर को सदा–सदा के लिए पंचतत्व में विलीन कर दिया गया और भारत के राजनैतिक क्षितिज का महान तपस्वी, राजनीतिज्ञों का आदर्श, जन–जन का चेहता, ज्योति नक्षत्र का प्रकाशमान ध्रुव तारा सदा–सदा के लिए ब्रह्मांड के गहन अन्धकार में विलीन हो गया।

परिचय

नानाजी देशमुख

मराठवाड़ा के परभणी ज़िलान्तर्गत कडोली गाँव हैं। हिंगोली तालुका के इस छोटे गाँव में अमृतराव देशमुख अपनी धर्मपत्नी राजाबाई, तीन पुत्रियों और एक पुत्र के साथ रहते थे। इस परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा मज़बूत थी परंतु आर्थिक हैसियत कमज़ोर। अक्षर ज्ञान से वंचित और लोकज्ञान में दक्ष इस दंपति के घर 11 अक्तूबर 1916 को एक पुत्र ने जन्म लिया। पाँचवीं संतान। नामकरण हुआ चंडिकादास। शैशवास्था में ही यह बालक अनाथ हो गया। बड़े भाई आबाजी देशमुख ने लालन-पालन किया। आसपास विद्यालय नहीं था। ग्यारह वर्ष की आयु तक अक्षर-ज्ञान से दूर इस बालक ने रिसोड़ नामक जगह पर पढ़ाई शुरू की। विद्यालय के शिक्षक चंडिकादास की मेधा से प्रभावित हुए। यहीं पढ़ाई के दौरान इनका परिचय संघ से हुआ। आठवीं कक्षा के पश्चात रिसोड़ छोड़कर वाशिम आना पड़ा। आश्रय मिला पारिवारिक परिचित पाठक परिवार में। इस परिवार के बच्चों की तरह चंडिकादास भी घर के काम-काज में हाथ बँटाते। धीरे-धीरे इस परिवार के विशिष्ट अंग बन गए। पाठक परिवार संघ से संबद्ध था। वाशिम में डॉ. हेडगेवार बहुधा आते थे। संपर्क बढ़ा। चंडिकादास और प्रभावित हुए तथा संघ-कार्य में रम गए। 1937 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए बाहर जाना था, पर इसके लिए साधनाभाव था। पाठक परिवार के आबा पाठक और चंडिकादास ने तय किया कि शहर से फल-सब्ज़ी आदि ख़रीदकर थोड़ा मुनाफ़ा लेकर संपन्न परिवार में पहुँचाएँगे। इस तरीक़े से धन इकट्ठा होगा और आगे की पढ़ाई करेंगे। दोनों मित्र संघ कार्य के संग संग इसे करने लगे। दो वर्षों में इनके पास कुछ पैसे जमा हो गए। आगे की पढ़ाई के लिए वे राजस्थान के मिलानी ज़िला कालेज के लिए चले। साथ में और दो किशोर थे- बाबा सोनटक्के एवं बाजीराव देशमुख।

इन चारों मित्रों के लिए यह नई जगह थी। यहाँ इन्हें पढ़ाई करनी थी और साथ में संघ कार्य भी। चंडिकादास फुटबाल अच्छा खेलते थे। किसी को दु:खी देखकर सहायता के लिए तत्पर भी रहते थे। परिणामस्वरूप लोकप्रियता बढ़ी। दूसरों का कष्ट वे अपना बना लेते। उसे दूर करने की हर संभव कोशिश में प्राणपण से जुट जाते। परोपकार की यह वृत्ति पल्लवित-पुष्पित होने लगी। परिणामत: चंडिकादास को नया संबोधन मिला- नानाजी। जैसे नाना अपने बच्चों के लिए चिंतित रहता है। जो व्यक्ति दूसरों के संकट अपना बना लेता है और उससे जूझता है, बग़ैर किसी हित-कामना के, समाज भी उसे

अपना लेता है। अपना परिजन बना लेता है। साथ ही सम्मानसूचक संज्ञा देता है। दादा, नाना आदर प्रगट करने और आत्मीयता जताने वाला संबोधन है। यह संबोधन विशेषण का दर्ज़ा प्राप्त कर लेता है और मूल नाम की जगह स्थापित हो जाता है। नानाजी ऐसा ही विशेषण है जो संज्ञा चंडिकादास को विस्थापित कर लोगों की जुबान पर बस गया। आलम यह कि हमें स्मृति पर ज़ोर देना पड़ता है, नानाजी देशमुख का वास्तविक नाम क्या है। माता-पिता के दिए नाम को समाज-प्रदत्त नाम ने विस्मृत बना दिया। यह सामाजिक स्वीकृति एवं कर्म-कीर्ति का सुंदर परिणाम है और प्रमाण भी।

पिलानी की एक घटना उल्लेखनीय है, जिसके माध्यम से ज्ञात होता है कि भविष्य में चंडिकादास सामाजिक कर्म में संलिप्त होंगे। कालेज के संस्थापक सेठ घनश्याम दास बिड़ला चंडिका दास की योग्यता, कर्मठता, आत्मविश्वास और विश्वसनीयता से प्रभावित होकर प्राचार्य सुखदेव पांडेय से बताया कि मैं इस युवक को अपना निजी सहायक बनाना चाहता हूँ। इस एवज में उसे प्रतिमाह अस्सी रुपए वेतन एवं भोजन आवास की सुविधा देने की इच्छा जताई। चंडिका दास की आर्थिक स्थिति एवं उस देश-काल के लिहाज़ से यह प्रस्ताव आकर्षक था। पर उन्होंने बिड़ला का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। दरअसल उनके मन में भावी जीवन की रूपरेखा तय होने लगी थी। देश, समाज की सेवा के मार्ग पर चलना इन्होंने निश्चय कर लिया था, जिसे निकट भविष्य में पूर्णतया निभाना था।

सन 1940 में चंडिकादास संघ की प्रथम वर्ष शिक्षा के लिए नागपुर गए। वहाँ डॉ. हेडगेवार का अंतिम भाषण सुना। परिणामस्वरूप तय कर लिया कि आगे पढ़ाई नहीं करनी है और पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना है। डॉ. हेडगेवार के अलावा बाबा साहेब आप्टे से भी वे बेहद प्रभावित थे। इसलिए इन्होंने आप्टे साहब से अपने लिए कार्य पूछा। आप्टे साहब ने इन्हें भाऊ जुगादे के साथ आगरा शहर में संघ कार्य के लिए भेज दिया। तब इनकी उम्र चौबीस साल थी। इसी दौरान पं. दीनदयाल उपाध्याय कानपुर से बी.ए. पास कर एम.ए. की पढ़ाई के लिए आगरा आए थे। दीनदयाल जी भी संघ के एक अच्छे कार्यकर्ता बन चुके थे। अत: आगरा में तीनों कार्यकर्ता एक कमरे में रहने लगे। साथ रहने से इनकी दोस्ती प्रगाढ़ हुई, जो जीवनभर क़ायम रही। आगरा में कुछेक महीना रहने के बाद चंडिकादास को गोरखपुर भेजा गया। वे अपने कार्य में जुटे रहे। देश आज़ाद हुआ पर साथ ही इसके दो टुकड़े भी हुए। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में गहरा तनाव व्याप्त था। 30 जनवरी 1948 को हत्यारे नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। नानाजी देशमुख पर आरोप लगा कि इन्होंने महंथ दिग्विजयनाथ से नाथूराम गोडसे की मुलाक़ात कराई और पिस्तौल दिलवाई। परिणामत: नानाजी गिरफ़्तार कर लिए गए। जेल से छूटने के पश्चात वे लखनऊ आ गए। यहाँ रहते हुए उनका जीवंत संपर्क गोरखपुर के कार्यकर्ताओं से बना रहा। वे कार्यकर्ताओं के दु:ख-सुख में भी

भागीदार रहते थे। ऐसे ही एक कार्यकर्ता थे कृष्णकांत, जो प्रचारक जीवन से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहते थे। जीविकोपार्जन के लिए इन्हें कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था। नानाजी ने इनका विवाह आयोजित कराया और पति-पत्नी दोनों की शिक्षा एवं संस्कारक्षमता का उपयोग करने के लिए शिशु पाठशाला की कल्पना की। नामकरण किया सरस्वती शिशु मंदिर। इस समय पहला सरस्वती शिशु मंदिर 1949 में नानाजी के मार्गदर्शन में प्रारंभ हुआ, जिसकी शृंखला-सी बन गई।

1952 में पहला आम चुनाव होना था। श्यामाप्रसाद मुखर्जी के 'भारतीय जनसंघ' में संघ ने पं. दीनदयाल उपाध्याय और नानाजी देशमुख को भेजा। नानाजी अपनी पार्टी के कार्य में जुट गए। जनसंघ का काम करते हुए लालबहादुर शास्त्री, डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. संपूर्णानंद, चौधरी चरण सिंह सरीखे नेताओं से इनके संबंध विकसित हुए। भारतीय जनसंघ के सांगठनिक विस्तार और विकास के लिए दीनदयाल जी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया। अपने गहरे साथी दीनदयाल जी की हत्या के पश्चात भी वे अपने मिशन में पूरी दृढ़ता से जुटे रहे। अपने साथी की स्मृति में नानाजी ने 1972 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' की स्थापना की और कालांतर में 'मंथन' नामक त्रैमासिक शोध-पत्रिका हिंदी और अंग्रेज़ी में शुरू की।

अपनी विचारधारा और संगठन की सीमाओं का अतिक्रमण कर नानाजी देशमुख अपने दौर के हर बड़े आंदोलन से जुड़ते थे। शर्त यह रहती थी कि उस आंदोलन का मक़सद जनकल्याण और राष्ट्र को सुदृढ़ करना हो। महात्मा गांधी के अनन्य अनुयायी आचार्य विनोबाभावे के 'भूदान' में भी शामिल हुए। नानाजी एक तरफ़ राजनीतिक हस्तक्षेप के जरिए परिवर्तन की ज़मीन तैयार कर रहे थे तो साथ ही रचनात्मक कार्य के लिए भी सोचते-विचारते रहते थे। कारण था सत्ता दल की निरंकुशता और इससे टकराने की कामना वाले विपक्षी दलों का व्यक्तिवाद और अवसरवाद। इसलिए दोनों में इन्हें भारत का भविष्य नहीं दिखता था। इंडियन एक्सप्रेस के स्वामी रामनाथ गोयनका के माध्यम से नानाजी जयप्रकाश नारायण से जुड़े। जेपी के अतीत और वर्तमान ने नानाजी को बेहद प्रभावित किया। आपातकाल के दौरान जे.पी. के व्यक्तिगत सत्ता पाने की कामना से रहित होकर संघर्ष और चिंता ने नानाजी के मन में उनके प्रति श्रद्धा पैदा किया। तिहाड़ जेल में रहते हुए नानाजी का संपर्क चरण सिंह, प्रकाश सिंह बादल आदि विपक्षी नेताओं से हुआ। क़रीब सत्रह महीनों के कारावास में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगे कि देश का पुनर्निर्माण राजशक्ति से नहीं अपितु लोक शक्ति से होगा। राजनीतिक संस्कृति विकृत होती जा रही थी। इसे जे.पी. के साथ नानाजी भी महसूस कर रहे थे।

17 फरवरी को इंदिरा गांधी ने लोकसभा चुनाव की घोषणा कर सबको चौंका दिया। तीन दिनों के भीतर 20 फरवरी को जनसंघ, कांग्रेस संगठन, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी सहित सभी प्रमुख विपक्षी दलों ने जनता पार्टी का गठन करके उसमें

अपना विलयकर एक चुनाव चिह्न पर चुनाव में उतरने का फ़ैसला किया। नवगठित जनता पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखर और चार महामंत्रियों में एक नानाजी बनाए गए। नानाजी ने चुनाव नहीं लड़ने का निर्णय किया था परंतु जे.पी. के आदेश पर उत्तर प्रदेश के बलरामपुर क्षेत्र से प्रत्याशी बने। बलराम की रानी राजलक्ष्मी को इन्होंने चुनाव में हराया। इस आम चुनाव में जनता पार्टी की जीत हुई पर साथ ही आंतरिक सत्ता संघर्ष भी आरंभ हो गया। ऐसे में नानाजी एकसाथ तीन मोरचे पर सक्रिय हुए। एक, दीनदयाल शोध संस्थान को एक प्रभावकारी बौद्धिक केंद्र बनाना। दो, जनता पार्टी के अंदरूनी सत्ता कलह को समाप्त कर सरकार को जे.पी. के सपनों की पूर्ति का माध्यम बनाना। तीन स्वयं के लिए ग़ैर राजनीतिक रचनात्मक कार्य की भूमिका निश्चित करना। राजनीति की चरित्रगत गिरावट ने उनके मन में वितृष्णा पैदा की। सत्ता प्राप्त करने के लिए छीना-झपटी और षड्यंत्रों को देख उन्होंने तय किया कि परिवर्तन के लिए समाज के कमज़ोर लोगों को सशक्त बनाने हेतु रचनात्मक कार्य को माध्यम बनाना है।

उनका विश्वास दृढ़ होता गया कि वर्तमान राजनीतिक प्रणाली के भीतर लोकशक्ति का जागरण और सर्वांगीण विकास असंभव है। इस दिशा में क़दम बढ़ाने के लिए उन्होंने 20 अप्रैल 1978 को साठ साल से अधिक आयु के अनुभवी राजनीतिज्ञों से आग्रह किया कि वे सत्ता से अलग होकर रचनात्मक कार्य में आएँ। कोई नहीं आया। पर नानाजी निराश नहीं हुए। 8 अक्तूबर 1978 को पटना में जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में एक ऐतिहासिक वक्तव्य देकर सत्ता राजनीति से संन्यास की घोषणा की। उन्होंने कहा कि अब वे चुनाव नहीं लड़ेंगे और आगे का जीवन रचनात्मक कार्य में लगाएँगे। बासठ साल की आयु में नानाजी ने 54 एकड़ क्षेत्रफल का एक विशाल परिसर बनाया। जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती देवी के नाम पर इसका नामकरण किया- 'जयप्रभा ग्राम' 'हर खेत को पानी, हर हाथ को काम' का नारा देकर उन्होंने ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए चार सूत्र निर्धारित किए- स्वावलंबन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समरसता। रचनात्मक कार्य की दिशा में अग्रसर होते हुए नानाजी ने चित्रकूट में 'ग्रामोदय योजना विकसित की ताकि आरंभिक शिक्षा से एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त युवजन शहरों की ओर भागने की बजाय ग्राम्य जीवन अपनाने की दिशा में प्रवृत्त हों। इन्होंने चित्रकूट में आरोग्यधाम, उद्यमिता विद्यापीठ, गोपालन, वनवासी छात्रावास, गुरुकुल आदि प्रकल्पों की एक शृंखला ही खड़ी कर दी।

नानाजी देशमुख के रचनात्मक अवदानों को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति ने इन्हें 1999 में राज्यसभा के लिए नामित किया ताकि पूरे देश को इनके अनुभव और तप का लाभ मिले। राष्ट्र ने इनके प्रति सम्मान देते हुए पद्मभूषण से सम्मानित भी किया। 27 फरवरी 2010 को नानाजी महाप्रयाण कर गए और छोड़ गए विराट दाय।

राष्ट्रऋषि नानाजी देशमुख

एकात्म मानववाद के शिल्पकार

जन्म	: शरद पूर्णिमा, 11 अक्टूबर 1916
स्थान	: ग्राम-कडोली, जिला-हिंगोली, महाराष्ट्र
माता-पिता	: श्रीमती राजाबाई, श्री अमृतराव देशमुख
1934	डा. हेडगेवार से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रतिज्ञा
1940	गोरखपुर विभाग (उ.प्र.) में संघ-प्रचारक
1948	स्वदेश प्रकाशन, लखनऊ के पहले प्रबंध निदेशक
1950	गोरखपुर में प्रथम सरस्वती शिशु मंदिर की स्थापना
1951	भारतीय जनसंघ (उ.प्र.) के संगठन मंत्री,
1967	संविद सरकार का प्रयोग, विनोबा भावे के साथ उ.प्र. में पद-यात्रा भारतीय जनसंघ के अखिल भारतीय संगठन मंत्री
1968	दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना
1974	लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व में संपूर्ण क्रान्ति आंदोलन
1975	आपातकाल विरोधी लोक संघर्ष समिति के प्रथम महासचिव, कारावास
1977	रिहाई, बलरामपुर (गोंडा) से लोकसभा के लिए निर्वाचित, केन्द्र में मंत्री पद ठुकराया सत्तारूढ़ जनता पार्टी के महासचिव
1978, अक्टू. 11	राजनीति से संन्यास, गोंडा में रचनात्मक प्रकल्प का आरम्भ
1978-1990	गोंडा, नागपुर, बीड़, अहमदाबाद में रचनात्मक कार्य
1990-91	चित्रकूट में पहले ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना, उसके संस्थापक कुलाधिपति, चित्रकूट में अनेक समाजोपयोगी प्रकल्पों की स्थापना चित्रकूट क्षेत्र के 500 से भी अधिक ग्राम में स्वावलम्बन अभियान का शुभारम्भ
1997, अक्टू. 11	एम्स को देहदान की घोषणा
1999	पद्म विभूषण तथा अन्य सम्मान, पुणे, अजमेर, कानपुर, बुंदेलखण्ड वड़ोदरा और चित्रकूट विश्वविद्यालयों द्वारा डी.लिट की मानद उपाधि
1999-2005	राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के लिए मनोनीत
निर्वाण	27 फरवरी 2010, चित्रकूट
देहदान	28 फरवरी 2010, एम्स, दिल्ली